CHETANA
INTERNATIONAL JOURNAL OF EDUCATION (CIJE)
Peer Reviewed/Refereed Journal
(ISSN: 2455-8729 (E) / 2231-3613 (P))
Impact Factor
SJIF 2023 - 7.286

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

First draft received: 12.06.2023, Reviewed: 18.06.2023, Accepted: 25.06.2023, Final proof received: 30.06.2023

मानव अधिकार और भारतीय संस्कृति एवं साहित्य

डॉ.आराधना सक्सैना
सह. आचार्य, समाजशास्त्र
राजकीय कला महाविद्यालय, सीकर (राजस्थान)
Email- aradhanasaxena14@gmail.com, Mob. 9116778523

सारांश

मानवाधिकारों की संकल्पना एक व्यापक जीवन–दर्शन पर आधारित संकल्पना है जिसके घेरे में समूचा जीवन और समाज व्यवस्था आ जाती है। मानवाधिकारों की संकल्पना की बूनियाद है मनुष्य को सब कुछ का पैमाना मानना। मेन इज दी मेजर ऑफ थिग्स। इसी बात को कार्ल मार्क्स ने 'मेनइज दी रूट ऑफ मैनकाइन्ड' कह कर व्यक्त किया है। मनुष्य मानवता की जड़ हैः मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है, मनुष्य चीजों का माप दण्ड है, मनुष्य ही एक मात्र सतय है। इस तरह की बातें इस विचारधारा को मानने वाले लोगों से अक्सर सुनने को मिल जाती हैं। वैज्ञानिक मनुष्य को जीवों में सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, दार्शनिक उसमें चेतना की चरम अभिव्यक्ति खोजते हुए सृष्टि का केन्द्रीय सीान उसी को देते हैं। यहॉ तक कि मनुष्य के इतिहास को एक यान्त्रिक प्रक्रिया के रूप में देखने और मानवीय नियति को यान्त्रिक स्तर पर नियन्त्रित कर सकने की आशा करने वाले भी अपने प्रयत्नों का प्रयोजन मनुष्य का कल्याण ही मानते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी भी सामाजिक व्यवस्था की कसौऔ और बुनियादी प्रेरणा भी यही है कि उसके अन्तर्गत मनुष्य के बहुआयामी विकास को किस सीमा तक एक अनुकूल वातावरण व सुविधाऍ मिलती है। जो व्यवस्था मनुष्य के विकास की संभावनाओं को मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक अथवा आर्थिक स्तर पर रोकती है, उसे हम मानवीय और नैतिक व्यवस्था नहीं कह सकते।

मुख्य शब्द : *मानवाधिकार, जीवन-दर्शन, समाज व्यवस्था आदि.*

मानवाधिकारों की संकल्पना एक व्यापक जीवन–दर्शन पर आधारित संकल्पना है जिसके घेरे में समूचा जीवन और समाज व्यवस्था आ जाती है। मानवाधिकारों की संकल्पना की बूनियाद है मनुष्य को सब कुछ का पैमाना मानना। मेन इज दी मेजर ऑफ थिग्स। इसी बात को कार्ल मार्क्स ने 'मेनइज दी रूट ऑफ मैनकाइन्ड' कह कर व्यक्त किया है। मनुष्य मानवता की जड़ हैः मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है, मनुष्य चीजों का माप दण्ड है, मनुष्य ही एक मात्र सतय है। इस तरह की बातें इस विचारधारा को मानने वाले लोगों से अक्सर सुनने को मिल जाती हैं। वैज्ञानिक मनुष्य को जीवों में सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, दार्शनिक उसमें चेतना की चरम अभिव्यक्ति खोजते हुए सृष्टि का केन्द्रीय सीान उसी को देते हैं। यहॉ तक कि मनुष्य के इतिहास को एक यान्त्रिक प्रक्रिया के रूप में देखने और मानवीय नियति को यान्त्रिक स्तर पर नियन्त्रित कर सकने की आशा करने वाले भी अपने प्रयत्नों का प्रयोजन मनुष्य का कल्याण ही मानते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी भी सामाजिक व्यवस्था की कसौऔ और बुनियादी प्रेरणा भी यही है कि उसके अन्तर्गत मनुष्य के बहुआयामी विकास को किस सीमा तक एक अनुकूल वातावरण व सुविधाऍ मिलती है। जो व्यवस्था मनुष्य के विकास की संभावनाओं को मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक अथवा आर्थिक स्तर पर रोकती है, उसे हम मानवीय और नैतिक व्यवस्था नहीं कह सकते।

आज मानवाधिकारों की जोर शोर से की जाने वाली चर्चा मूलतः पाश्चात्य जगत् से आई है, ऐसा नहीं है। भारत में इस विचारधारा के प्रणेता रहे हैं। मानव गरिमा को महत्ता देने वाला यह विचार भारतीय संस्कृति, साहित्य व दर्शन में भी परिलक्षित होता है। भारतीय दार्शनिकों, विचारकों एवं विधि वेत्ताओं ने समय–समय पर मानव अधिकार और मौलिक स्वतंत्रताओं पर अपने विचार व्यक्त किये हैं और उन्हें मानव

मात्र के लिये अपरिहार्य घोषित किया है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में ऐसे अनेकों उदाहरण खोजे जा सकते हैं जो हमें मानव अधिकार की अवधारणा व आधारभूत तत्वों का आभास कराते हैं– उनमें उल्लेखनीय हैं–

वेद

1 ईसा पूर्व 1500 से 1000 वर्ष) वेद सर्वाधिक प्राचीन भारतीय ग्रंथ हैं जिनमें चारों वेद सम्मिलित है– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद। इन्हें अपौरूषेय माना गया है। इनकी रचना नहीं की गई वरन् ऋषियों ने वैदिक मंत्रों के दर्शन किये थे। इन वेदों में उल्लिखित कुछ महत्वपूर्ण विषय जैसे धर्म, औषधियों के विषय में ज्ञान, राजा के प्रजा के प्रति कर्तव्य, जनता के कर्तव्य आदि मानव अधिकरों के मूल तत्व की ओर संकेत करते हैं।

मनुस्मृति

भारत में मनुस्मृति मानवीय विधि के संहिताकरण के बहुत ही प्रारम्भिक प्रयास का प्रतिनिधित्व करती है। इस ग्रन्थ में 'धर्म' और 'दण्ड' की सर्वोपरिता को स्वीकार कर पाश्चात्य अवधारणा के श्त्नसम व िूंश से भी आगे विचार रखे गये हैं। मनुस्मृति में राजा की शक्तियों पर मंत्री परिषद और जनमत की युक्तियुक्त मर्यादा है। इस विचार में मानव अधिकार के विचार की झलक दिखाई देती है।

उपनिषद् आदि ग्रन्थ

सामाजिक समरसता ;ेवबपंस भ्तउवदमलद्ध एवं देशवासियों में एकता बनाये रखने से मानव हित सुरक्षित रहते हैं। उपनिषदों का यह विचार मानवाधिकार को सुरक्षित बनाने का आधार प्रस्तुत करती है –

सं गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
समनी वः आकूतिः समानानि हृदयानि वः।।

आज वैज्ञानिक व तकनीकी विकास का युग है, वैश्वीकरण का युग है। लास्की के शब्दों में आज सारी मानवता एक सूत्र में पिरो दी गई है। अतः मानवता को बचाने के लिये विश्व बंधुत्व की भावना की जरूरत है जिसकी घोषणा भारतीय मनीषियों ने इन शब्दों में कर दी थी किः–

''उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्''

इसी तरह 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः' के अन्तर्गत कल्याणकारी राज्य के बीज अन्तर्निहित नजर आते हैं।

साथ ही द्यौ शांतिरंतरिक्ष शांति पृथ्वी, शांति रापः शांति रौषधयः शांति वनस्पतायः द्वारा कह दिया गया है कि प्रकृति का इतना अंधाधुंध दोहन न किया जाये कि पर्यावरण संतुलन ही बिगड़ जाए। वस्तुतः पर्यावरण भी मानवाधिकार का महतवपूर्ण महलू हैं, क्योंकि मानव जीवन और पर्यावरण संरक्षण में अपृकिनीय सम्बन्ध है।

रामायाण

(काल 1500 ईसा पूर्व लगभग) – रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने धर्म परायणता का महत्व (यहाँ धर्म का अर्थ है कर्तव्य, मानव प्रेम, शांति, अहिंसा, अत्यधिक संग्रह से मुक्ति, नैतिकता व सेवा आदि के रूप में मानवाधिकारों का आभास कराया। वाल्मीकि द्वारा लिखा गया यह आदिश्लोक तो मनुष्य क्या पक्षियों के प्रति भी करूणा दर्शाता है– जबकि वाल्मीकि कहते हैं

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत् क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्।।

महाभारत

1 ईसा पूर्व लगभग 1000 वर्ष – वेद व्यास कृत महाभारत में जीवन की आचार संहिता, समाज का दर्शन, नैतिक सम्बन्ध और मानव समस्याओं का उल्लेख किया गया है महाभारत मानवाधिकारों का एक प्रतिनिधि ग्रन्थ कहा जा सकता है हालांकि इसमें मानवाधिकारों के उल्लंघन के भी अनेकों उदाहरण मौजूद हैं।

भगवद्गीता

1 ईसा पूर्व 700 वर्ष लगभग1/2 – गीता में वर्णित मानवीय भावनायें एवं अर्जुन को श्रीकृष्ण के उपदेश मानवाधिकार को रेखांकित करते हैं। इसके अलावा नर से नारायण बनने का लक्ष्य– यानी मानव को श्रेष्ठतर बनता है। यह ठीक वैसा ही है जैसा कि अरस्तु ने कहा है कि राज्य जीवन के लिये अस्तित्व में आया है और अच्छे जीवन के लिये बना हुआ है।

इसी तरह श्रीकृष्ण का यह कथन कि–

यदा यदा हि धर्मस्य गलानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणय साधूनां विनाशाय च दृष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थेय संभवामि युगे युगे।।

यानी दृष्टों या अपराधियों का संहार कने, सज्जनों या निर्दोषों की रक्षा करने और मानव धर्म को बनाये रखने के लिये कृष्ण प्रतिबद्ध हैं यानी राजा या शासन को प्रतिबद्ध होना चाहिये। यही लक्ष्य 1948 के मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा का है और यही लक्ष्य 1993 में सीपित मानवाधिकार आयोग और अन्य ऐसे ही संगठनों का है।

जैन दर्शन

जिसका व्रवर्तन श्री महावीर ने किया और जो जैन सम्प्रदाय के अनुसार अंतिम तीर्थकर थे। महावीर के अहिंसा, शांति और अपरिग्रह का उपदेश अगर कार्यान्वित हो तो मानवाधिकार स्वतः सीपित हो जायेगा। जैन दर्शन का स्याद्वाद का सिद्धान्त विचार अभिव्यक्ति के सिद्धान्त का ही एक रूप है। इस सिद्धान्त के अनुसार हर व्यक्ति के विचार में हो सकता है कि कुछ न कुछ सत्य हो या किसी दृष्टि से यह विचार सत्य हो।

बौद्ध धर्म और दर्शन

14550 ईसा पूर्व1/2 – इसका प्रवर्तन करते हुए गौतम बुद्ध ने अंहिसा, सरलता और नैतिकता आदि के अष्ट मार्ग का विचार दिया जो कि मानवाधिकार की आधारशिला है।

योग दर्शन

पतंजलि ऋषि का अष्टांग मनुष्य को शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ एवं आध्यात्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ बनने की कला बता कर मानव व्यक्तित्व के विकास की दिशा दिखाता है और मानवाधिकार को सार्थक और सोद्देश्य बनाता है।

कालिदास कृत कुमारसंभवम्

वस्तुतः मानवीय गरिमा बनाये रखने के लिये जीवन की सुरक्षा के साथ–साथ शारीरिक रक्षा एवं स्वास्थ्य की रक्षा भी आवश्यक है। यही तथ्य कुमार संभवम् में कालिदास द्वारा लिखे गये इन शब्दों में ध्वनित होता है कि – 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'।

अर्थशास्त्र

(ई. पूर्व 326) – कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में कानून एवं सरकार के सिद्धान्त, राजा की दिनचर्या, राजा के जनता के प्रति कर्तव्य, शासन कला आदि जनहितकारी या लोककल्याणकारी हो, ऐसा कहा है।

याज्ञवलक्य एवं नारद स्मृति

(काल 100–400 ईसा बाद) – इसमें उल्लिखित हिन्दू कानून, पाण्डुलेखन के नियम, न्यायिक आचरण आदि तथ्यों में मानवाधिकार के सूत्र निहित है।

महात्मा गांधी का विचार दर्शन

(विशेष रूप से अहिंसा का सिद्धान्त और अस्पृश्यता का विरोध) – गांधी का सम्पूर्ण जीवन और दर्शन, मानवीयता और मानवाधिकारों का प्रतिबिम्ब है। गांधी ने अपने देशवासियों को दासता, उत्पीड़न, शोषण, भेदभाव और अमानवीय व्यवहार से मुक्ति दिलाने का कार्य अहिंसा और सत्याग्रह के साधनों द्वारा किया। समस्त मानव समुदाय को मौलिक अधिकारों के पुनरूत्थान का विचार दिया। अहिंसा और अपरिग्रह के सिद्धान्त के अतिरिक्त अस्पृश्यता उन्मूलन, समाज के निम्नतम व्यक्ति को ऊपर उठाना, श्रम की प्रतिष्ठा, स्त्री शिक्षा आदि मानवाधिकार को अभिव्यक्ति देते हैं।

पं. जवाहरलाल नेहरू

भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री मानवाधिकारों के जबरदस्त हामी थे। पं. नेहरू ने अपने जीवनकाल में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में मानवाधिकारों के प्रत्येक उल्लंघन का विरोध ही नहीं किया वरन् मानवाधिकार को लागू करने के लिये पूरे विश्व जनमत को प्रभावित किया।

मानव अधिकारों को अभिव्यक्ति देने वाली भारतीय दृष्टि के अन्य अनेकों उदाहरण हैं जिनके आधार पर भारत को मानवाधिकारों का प्रवक्ता कहें तो अनुचित नहीं होगा। भारत में मिानव अधिकार से जुड़े दो पक्षों का अलग–अलग आकलन होना आवश्यक है। वैसे राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों को अलग–अलग देखना किसी भी तरह उचित नहीं है। इन्हें अलग किया भी नहीं जा सकता। इस क्रम में हम सबसे पहले अनुच्छेद 18 का विश्लेषण करना चाहते है। यह अनुच्छेद प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अन्तर चेतना और धर्म की स्वतंत्रता देता है इसमें उसे अपने धर्म या विश्वास में बदलाव की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है जिसका प्रयोग वह व्यक्तिगत या सामूहिक स्तर पर कर सकता है। उदारवाद मूल्य धर्म–निरपेक्षता के विचार के निकट हैं। यह आस्था उन सब समाजों के लिये अधिक उपयोगी है जो धर्मबहुल हैं और भारतीय संदर्भ में इन्हीं अर्थों में महत्त्वपूर्ण हैं। पिछले कुछ वर्षो से हम एक ऐसी स्थिति से गुजर रहे हैं जहां धार्मिक कट्टरपन और धार्मिक आस्थाओं से जुड़े प्रश्नों पर नये और उग्र तरीके से बहस हो रही है। पिछले वर्ष जिस तरह से गुजरात और उड़ीसा में ईसाइयों पर आक्रमण और बहस हुई है वह हमारी धार्मिक स्वतंत्रता की प्रतिबद्धता के लिये उत्साहवर्द्धक नहीं है, यो भी अल्पसंख्यकों की सुरक्षा उदारवादी व्यवस्था के आवश्यक अंग हैं। मुस्लिम संख्यक और उससे जुडे विवाद इस दृष्टि से भारतीय अनुभव को समृद्ध नहीं करते। मानव अधिकारों के इस विश्लेषण में यह स्पष्ट होता है कि उदारवादी, प्रजातांत्रिक परकिल्पनाओं से जुड़े ये अधिकार, फिलहाल तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में वास्तविकाता नहीं है। ये मानक इन देशों के समाजों और उन सब समूहों के लिये हैं जो राजनीति करते हैं, जीवन की भौतिक सुविधाओं के अभाव के फलस्वरूप भारतीय स्थिति में भी ये अधिकार एक मानक स्थिति है जिसके लिये विभिन्न राजनीतिक समूह प्रयासरत हो सकते हैं साथ ही साथ ये हमारे अपने समाज की बहुलता के लिये भी एक आदर्श है। यदि बहुलता का स्वरूप समाप्त होता है तो सामाजिक विघटन और तनावों की स्थिति लगातार बनी रहती है, यों भी भौतिक सुविधाओं का अभाव, विकास, मानव अधिकार और उससे जुड़े विभिन्न प्रश्नों को और अधिक जटिल बनाती है। राजनीतिक रूप से जागृत और चेतना के विकास के अवसर तो प्रदान करते ही हैं।

संदर्भसूची

1. कौशिक, आशा 'मानवाधिकार और राज्यः बदलते संदर्भ, उभरते आयाम', पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर 2004।
2. कौशिक, आशा, 'महिला–अधिकारों का प्रश्न : भारतीय संन्दर्भ', राज्य शास्त्र समीक्षा, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, वर्ष–30, अंक 1–2, जयपुर, जनवरी–दिसम्बर, 2000।
3. शर्मा, डॉ. कृष्ण कुमार, 'सामाजिक न्याय और मानवाधिकार, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 2014।
4. अग्रवाल, प्रमोद कुमार, न्यायतन्त्र और मानव अधिकार, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2005 निगम, नन्द्रेश, मानवाधिकारः नई दिशाए, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की वार्षिक पत्रिका, प्रथम अंक–2004
5. माथुर, कृष्ण मोहन, स्वतन्त्रोत्तर भारत में मानवाधिकार, ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2008।